कर्पूरी ठाकुर को भारत-रत्न: अनुप्रतीकों का राजनीतिक इस्तेमाल

प्रेम सिंह

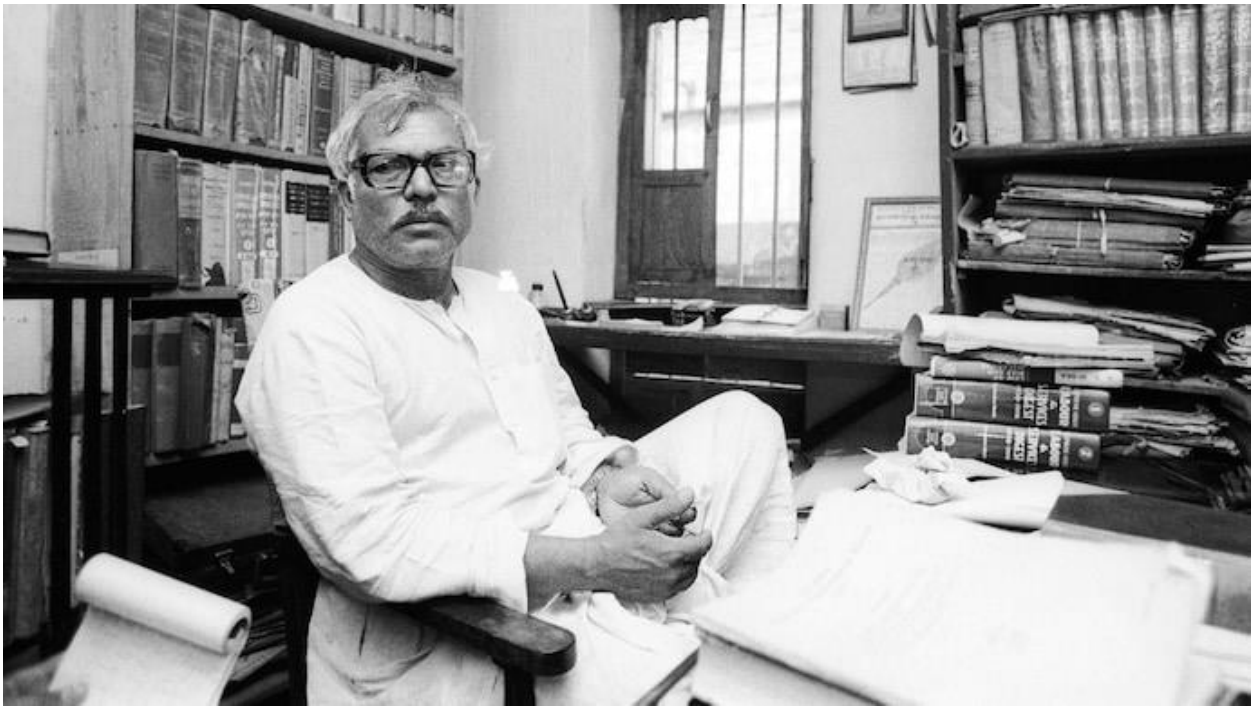

कर्पूरी ठाकुर (24 जनवरी 1924-17 फरवरी 1988) के जन्मशती वर्ष के अवसर पर जनवरी 2023 से लेकर अभी तक अलग-अलग जगहों पर काफी कार्यक्रम होते रहे। लेकिन मुख्यधारा मीडिया में उन कार्यक्रमों का कवरेज नहीं के बराबर था। केवल सोशल मीडिया पर उन कार्यक्रमों की जानकारी उपलब्ध होती थी। कर्पूरी ठाकुर की शख्सियत, राजनीति और विचारधारा का विवेचन करने वाले लेख और टिप्पणियां भी सोशल मीडिया और लघु पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए। भाजपा-नीत एनडीए सरकार ने कर्पूरी ठाकुर के जन्मशती वर्ष की समाप्ति पर जैसे ही उन्हें मरणोपरांत भारत-रत्न देने की घोषणा की, वे मुख्यधारा मीडिया में 'समाजवादी आइकन' के रूप में चर्चा का विषय बन गए।

अंग्रेजी अखबारों ने ज्यादा बढ़-चढ़ कर उनके बारे में रिपोर्टिंग, लेख और संपादकीय प्रकाशित किए। सरकार के इस औचक फैसले पर कई नेताओं और पार्टियों की प्रतिक्रियाएं भी मीडिया का विषय बनीं। इन सब में कर्पूरी ठाकुर को भारत-रत्न देने के फैसले के पीछे सरकार की राजनीति का उल्लेख और अनुसंधान भी हुआ। कहा गया कि सरकार ने विपक्ष की जाति-जनगणना के कार्ड को भोंथरा करने के लिए भारत-रत्न का दांव चला है। यानि राम-मंदिर निर्माण और उद्घाटन के साथ लबालब भरे "कमंडल" में "मण्डल" को डुबकाने का करतब कर्पूरी ठाकुर को भारत-रत्न देकर किया गया है। कर्पूरी ठाकुर को भहरत-रत्न देकर आरएसएस/भाजपा यह "सिद्ध" करना चाहते हैं कि 'हिंदुत्व' और सामाजिक न्याय में

कोई विरोध नहीं है। हालांकि, केंद्र सरकार ने पूरे जन्मशती वर्ष के दौरान बिहार या किसी अन्य राज्य में कर्पूरी ठाकुर को याद नहीं किया। भारत-रत्न से नवाजने के बावजूद भी लगता नहीं कि इस सरकार का कोई गंभीर सरोकार कर्पूरी ठाकुर से रहेगा। दरअसल, सरकार का यह एक चुनावी पैंतरा-भर है।

भारत-रत्न की राजनीति ने बिहार की महागठबंधन सरकार को भी चपेट में ले लिया। वहां कर्पूरी ठाकुर की 'विरासत के दावेदारों' में घमासान हो गया है। अत्यंत पिछड़े वर्गों (इबीसी) के 'इंजीनियर' नीतीश कुमार ने यह कहते हुए कि ठाकुर ने कभी परिवारवादी राजनीति नहीं की, राजद की परिवारवादी राजनीति पर तंज कस दिया। यह कह कर कि उन्होंने खुद भी कभी अपने परिवार को राजनीति में आगे नहीं बढ़ाया, अपने को कर्पूरी ठाकुर का 'असली वारिस' भी जता दिया। वारिस होने की दावेदारी को और मजबूत करने के लिए उन्होंने यह भी कह डाला कि उन्होंने कर्पूरी ठाकुर के बेटे रामनाथ ठाकुर को राज्यसभा का सदस्य बनाया, जो उनके पीछे-पीछे चलते हैं। उन्होंने भाजपा को भी संदेश दिया कि इबीसी वोटों पर अकेले उन्हीं का पेटेंट है। यानि, कर्पूरी ठाकुर को भारत-रत्न देने का फायदा उनके असली वारिस के गलियारे से हो कर गुजरता है!

जदयू और राजद में पिछले कुछ समय से कशमकश चल रही थी। इसके अलावा नीतीश खुंदक में थे कि उनके जैसे सबसे 'ऊंचे कद के नेता' के होते इंडिया गठबंधन ने उन्हें प्रधानमंत्री का उम्मीदवार घोषित करना तो दूर गठबंधन का अध्यक्ष तक नहीं बनाया। 2019 के लोकसभा चुनावों के पहले भी उन्हें अपेक्षा थी कि कांग्रेस आगे बढ़ कर उन्हें प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार स्वीकार करेगी। ऐसा नहीं होने पर वे महागठबंधन को छोड़ कर वापस भाजपा के साथ चले गए थे। 28 जनवरी को फिर से पलटी मारते हुए वे कर्पूरी ठाकुर की विरासत की गठरी उठा कर भाजपा के साथ चले गए हैं।

मजेदारी यह है कि भारत-रत्न की घोषणा से चर्चा में आए कर्पूरी ठाकुर मीडिया से बाहर हो गए हैं, और नीतीश कुमार केंद्र में आ गए हैं। अखबारों के संपादकीय और लेख कर्पूरी ठाकुर को छोड़ कर मंडल-कमंडल की राजनीति और उसके विभिन्न प्रकारों (वेरिएशंस) पर प्रकाश डाल रहे हैं। ज्यादातर राजनीतिक विश्लेषकों ने मान लिया है कि सोशल जस्टिस की राजनीति का भविष्य कर्पूरी ठाकुर की समाजवादी विचारधारा के साथ नहीं, 'हिंदुत्व' की राजनीति के साथ है, जो 'विकास' और 'गुड गवर्नेंस' का अजेंडा ले कर चलती है।

ऐसे में यह सवाल पूछना मुनासिब होगा कि कारपोरेट घरानों की गोद में बैठी सांप्रदायिकता, जातिवाद, व्यक्तिवाद और परिवारवाद की सत्ता-लोलुप राजनीति के गर्भ निकला भारत-रत्न कर्पूरी ठाकुर का सम्मान बढ़ाता है, या मरणोपरांत उनकी गरिमा का क्षय करता है? दरअसल, यह प्रकरण एक बार फिर स्पष्ट करता है कि कारपोरेट-कम्यूनल गठजोड़ की राजनीति राजनीतिक अनुप्रतीकों (आइकंस) को सत्ता की मर्यादाहीन राजनीति में इस्तेमाल कर उनकी अवमानना करती है।

यहां राजनेता कर्पूरी ठाकुर की थोड़ी चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी समाजवादी नेता थे। उनकी जितनी राजनीति और समाजवादी विचारधारा में पैठ थी, उतनी ही साहित्य, कला और संस्कृति में। उनका अपना प्रशिक्षण समाजवादी आंदोलन और विचारधारा में हुआ था। लेकिन फुले, अंबेडकर और पेरियार समेत सभी परिवर्तनकारी विचारों को वे आत्मसात करके चलते थे। लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, नागरिक स्वतंत्रता, मानवाधिकार जैसे मूलभूत आधुनिक मूल्यों के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता थी। सादगी और अपने पद का अपने परिवार और मित्रों के लिए किंचित भी फायदा नहीं उठाने की उनकी खूबी, उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व के अलावा गांधीवादी-समाजवादी धारा से भी जुड़ी थी। कर्पूरी ठाकुर अति-पिछड़ी और संख्या में अत्यल्प नाई जाति से थे। इसके बावजूद उन्होंने अपनी एक स्वतंत्र राजनीतिक हैसियत बनाई।

कर्पूरी ठाकुर दरअसल स्वतंत्रता आंदोलन और समाजवादी आंदोलन की संतान थे। उन्होंने अपनी राजनीतिक पारी की शुरुआत कॉलेज की पढ़ाई छोड़ कर भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सेदारी से की थी। वे 1952 के चुनावों में बिहार विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। तब से लेकर मृत्युपर्यंत उन्होंने हमेशा लगातार विधानसभा चुनाव में जीत हासिल की। उन्होंने 1977 में समस्तीपुर से लोकसभा का चुनाव जीता। अपने पूरे राजनीतिक कैरियर में वे केवल 1984 का लोकसभा का चुनाव हारे थे। बिहार विधानसभा में उन्होंने लंबे समय तक नेता विपक्ष की भूमिका निभाई। वे दो बार बिहार के मुख्यमंत्री बने - 22 दिसंबर 1970 से 2 जून 1971, और 24 जून 1977 से 21 अप्रैल 1979। उन्हें संसदीय नियमों और प्रक्रियाओं की गहरी जानकारी थी, और वे उनका निर्वाह करते थे।

उन्होंने बिहार में अत्यंत पिछड़े वर्गों, अन्य पिछड़े वर्गों, महिलाओं और आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्ग के गरीबों के लिए क्रमश: 8, 12, 3, 3 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया था। जिसके लिए सवर्ण सामंती मानसिकता के लोगों, खास कर जनसंघ वालों की ओर से उन्हें अपमानजनक भाषा का सामना करना पड़ा था। न केवल दक्षिण के नेता देवराज अर्स ने ठाकुर की आरक्षण नीति पर कटाक्ष किया था, बल्कि समाजवादियों के बीच भी वह विवाद का विषय बनी थी। कुछ लोगों का कहना है कि कोटा के भीतर उप-कोटा का प्रावधान जेपी की सहमति और प्रेरणा से हुआ था, जबकि कुछ लोग इससे उलट राय रखते हैं। ठाकुर के उत्तराधिकारी होने का दावा करने वाले लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार दोनों ही ऐसे नेता साबित हुए हैं, जो केवल जातियों का चुनावी गणित बिठाते हैं। वे समाजवाद और सामाजिक सद्भाव के प्रति ठाकुर की प्रतिबद्धता से प्रभावित नहीं हैं।

प्रतिबद्ध समाजवादी होने के नाते कर्पूरी ठाकुर ने हमेशा वंचित समूहों को आगे लाने का प्रयास किया, लेकिन वे खुद को पूरे बिहार की जनता का प्रतिनिधि मानते थे। उनकी 'छोटी' जाति सहित बहुत-सी बाधाएं उनके रास्ते में आती रहीं, लेकिन उन्होंने अपने राजनीतिक संघर्ष और विचारधारात्मक प्रतिबद्धता से उन बाधाओं का मुकाबला किया। कभी सांप्रदायिक जातिवाद और जातिवादी अस्मितावाद का सहारा नहीं लिया। लिहाजा, वे किसी जाति-विशेष के नेता नहीं, 'जननायक' के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके व्यक्तित्व की इस खूबी को जाबिर हुसैन ने अपनी कविता 'भीड़ से घिरा आदमी' में बखूबी चित्रित किया

है। उन पर लिखी गईं कई कविताओं में सर्वश्रेष्ठ यह कविता बताती है कि कर्पूरी ठाकुर का व्यक्तित्व क्षेत्र, जाति और धर्म से बंधा नहीं था। देश से भी वह बस उतना ही बंधा था कि उपनिवेशवादी गुलामी से उसकी मुक्ति हो; ताकि बहुपरती सामंतवादी-वर्चस्ववादी व्यवस्था को बदल कर बराबरी का समाज कायम किया जा सके।

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान खुद कर्पूरी ठाकुर ने 'हम सोए वतन को जगाने चले हैं' शीर्षक कविता बनाई थी: "*हम सोए वतन को जगाने चले हैं/ हम मुर्दा दिलों को जिलाने चले हैं।/ गरीबों को रोटी न देती हुकूमत,/ जालिमों से लोहा बजाने चले है।/ हमें और ज्यादा न छेड़ो, ए जालिम!/ मिटा देंगे जुल्म के ये सारे नज़ारे।/ या मिटने को खुद हम दीवाने चले हैं/ हम सोए वतन को जगाने चले हैं।*" यह कविता एक समय समाजवादी आंदोलन के संघर्ष में 'प्रभात फेरी' का गीत बन गई थी। यह कविता भी कर्पूरी ठाकुर के सामाजिक-राष्ट्रीय विज़न को सामने लाती है।

डॉक्टर लोहिया की यह स्थापना कि जातियां शिथिल होकर वर्गों में परिणत हो जाती हैं और वर्ग संघटित होकर जातियों का रूप धारण कर लेते हैं, कर्पूरी ठाकुर की जाति और वर्ग के सवाल की समझ को व्यावहारिक स्तर पर निर्देशित करती है। सामाजिक न्याय के नाम पर सामंती शैली में परिवारवादी राजनीति करने वाले नेता जब खुद को कर्पूरी ठाकुर की विरासत का वाहक बताते हैं, तो उनका अवमूल्यन ही होता है!

राजनीति में दलित, आदिवासी, पिछड़ों, महिलाओं और गरीब मुसलमानों को राजनीति में आगे लाने की लोहिया की पेशकश देश की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक संरचना को हमेशा के लिए बदल डालने का एक युगांतरकारी विचार था। लोहिया ने इन हाशिये पर स्थित समुदायों के दिमाग के वि-ब्राह्मणीकरण (डि-ब्राहमणाईजेशन) और वि-औपनिवेशीकरण (डि-कोलोनाईजेशन) की आशा की थी। क्योंकि यह दिमाग पुराने ब्राह्मणवादी और नए उपनिवेशवादी मूल्य-विधान से बहुत हद तक एक मुक्त क्षेत्र था। इस रूप में वह 'दिमाग' सांप्रदायिक फासीवाद और पूंजीवादी साम्राज्यवाद की स्थायी काट हो सकता था। लेकिन युगांतर उपस्थित करने की संभावनाओं से भरी लोहिया की इस पेशकश को सामाजिक न्याय की राजनीति करने वाले नेताओं ने फूहड़ जातिवाद में घटित कर दिया; और उसे सांप्रदायिक फासीवाद और पूंजीवादी साम्राज्यवाद की सेवा में लगा दिया। पिछड़े/दलित नेताओं में अकेले कर्पूरी ठाकुर ने अपने राजनीतिक कर्म में लोहिया की आशा को अपने व्यक्तित्व और राजनैतिक कर्म में फलीभूत किया। आशा की जानी चाहिए कि उनकी प्रासंगिकता के इस सबसे महत्वपूर्ण आयाम को भारत-रत्न की राजनीति में ओझल नहीं होने दिया जाएगा।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं.*)